शोधामृत
(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No- 81-85

©2025 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

सुषमा मुण्डू
शोधार्थी,
विश्वविद्यालय हिंदी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची.

Corresponding Author :

सुषमा मुण्डू
शोधार्थी,
विश्वविद्यालय हिंदी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची.

डॉ. सच्चिदानंद चतुर्वेदी की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक और पारिवारिक यथार्थ

शोध–सार : हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष डॉ. सच्चिदानंद चतुर्वेदी ने अपनी कहानियों में सामाजिक विरोधाभासों, अंतर्द्वंद्वों, विभीषिकाओं, त्रासदियों और विद्रूपताओं को बहुत तथ्यात्मक एवं यथार्थपरक ढंग से उद्घाटित किया है। स्वयं चतुर्वेदी जी कानपुर से निकलकर पहले भारत के उत्तर पूर्व में बसे और फिर दक्षिण भारत का रुख किया। इसी लिए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने भारत के बड़े इलाके को नजदीक से देखा है। इस संक्रमण काल में सामाजिक परम्पराओं और संस्कृतियों का किस प्रकार ह्रास हुआ है, इस पर विशेष रुप से चतुर्वेदी जी की दृष्टि गई है। कामकाजी पति–पत्नी के तनावपूर्ण रिश्तों को भी उन्होंने बहुत करीब से देखने की कोशिश की है। महत्त्वपूर्ण यह है कि उनकी रचनाओं में जो लोकाचार दृष्टिगोचर होता है वह भारत के ग्रामीण परिवेश की खुशबू को पाठकों तक बिखेर देता है।

बीज–शब्द : संस्कृति, परंपरा, सामाजिक, पारिवारिक, दाम्पत्य, सामंतवादी, जातिवादी, पितृसत्ता।

सच्चिदानंद चतुर्वेदी की कहानी 'रोशनी की लकीरें' एक ऐसी संस्कृति और परंपरा को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है जो आज कहीं पीछे छूटी जा रही है। दरअसल उक्त कहानी जिस शैली में लिखी गई है, उससे यह स्पष्ट आभास होता है कि लेखक स्वयं इस कहानी में मौजूद हैं और अपनी ही कथा बता रहे हैं। यह सत्य भी है कि लेखक की पहली नौकरी सुदूर उत्तर पूर्वी क्षेत्र अरुणाचल प्रदेश में हुई थी। पुराने रीति–रिवाजों को मानने वाले उत्तर प्रदेश और बिहार के लोगों की इंसानियत उक्त कहानी में स्पष्ट रुप से परिलक्षित हुई है। बिहार के मूल निवासी पुलिस वाले ने ट्रेन पर चढ़ते हुए ही जब लेखक को देखा तब समझ गया कि यह व्यक्ति बिहार अथवा उत्तर प्रदेश का है। वह पुलिस वाला, जो स्वयं भी बिहार का मूल निवासी था उसे उक्त यात्री की सुरक्षा

की शंका हुई क्योंकि तब आसाम का माहौल हिंदीभाषियों के लिए ठीक नहीं था। बिहार और उत्तर प्रदेश के लोगों को देख कर उनके साथ आसाम के मूल निवासी तमाम किस्म की बदतमीजियां करते थे। पुलिसवाला इन सब से वाकिफ था। दूसरी तरफ लेखक को इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि आसाम का माहौल कैसा है। जब ट्रेन से उतरने पर सिपाही ने उसे अपने साथ, अपने घर ले जाना चाहा तब लेखक किसी भी हालत में उसके साथ घर नहीं जाना चाहता था क्योंकि उसके मन–मस्तिष्क में पुलिस वालों के प्रति एक ऐसी धारणा पूर्व से ही बनी हुई थी कि पुलिस के लोग कुछ भी कर सकते हैं। इसी लिए लेखक उस पुलिस वाले से अपने आप को बचाना चाह रहा था। दूसरी ओर पुलिस वाला इस लिए जिद पर अड़ा था क्योंकि वह आसाम के हालातों से पूर्ण रूप से वाकिफ था। अंततः उसने लेखक को अकेले नहीं जाने दिया और जबरदस्ती अपने आवास की ओर ले गया। लेखक ने उस घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है– "मेरे पास सोचने, निर्णय लेने का समय नहीं था; मेरा बिस्तरबंद वह लिए जा रहा था, मेरी शिक्षा के सभी प्रमाण-पत्र उसी में थे, नया सिलाया गया एक मात्र कोट भी उसी में था। चल दिया पीछे-पीछे, बिना यह जाने, कहाँ जा रहा हूँ, कहाँ ले जा रहा है?"[1] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि लेखक को इस स्थिति में कुछ भी समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। अंजान शहर में एक पुलिसवाला उसे अपने साथ ले जाने की जबरदस्ती कर रहा था तो स्वाभाविकरूप से किसी को भी भय लग सकता है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि पुलिसवाले के मन में कोई छल–प्रपंच नहीं था। वह सिर्फ एक पवित्र उद्देश्य के साथ लेखक को अपने घर ले जा रहा था क्योंकि उसे पता था कि रात के अंधेरे में उस की सुरक्षा करने वाला कोई नहीं है। एक तरफ वह पुलिस की ड्यूटी निभा रहा था तो दूसरी तरफ अपनी मिट्टी का कर्ज अदा करने की कोशिश कर रहा था। जब वह लेखक को लेकर अपने घर पर पहुंचा तो उसने अपनी पत्नी को क्या कहा, यह द्रष्टव्य है– "रमेश की माई! हमारे साथ आज अपने देश के एक बाबू आए हैं। बेचारे नौकरी पर अरुणाचल जा रहे हैं कोई ठिकाना नहीं था इनका गौहाटी में अपने घर लिवा लाया। असम को तो तुम जानती ही हो।"[2] उक्त पंक्तियों से सिपाही के निष्कलुष हृदय का पता चलता है। यद्यपि लेखक अजनबियों के घर में अपने आप को बहुत संयत महसूस नहीं कर रहा था और बहुत सजगता से घर के भीतर हो रहे क्रिया–कलापों के साथ एडजस्ट करने की कोशिश कर रहा था परंतु पुलिस वाले की पत्नी ने लेखक के साथ ऐसा व्यवहार किया जैसे वह उनकी माँ ही हो। आज भले ही उत्तर आधुनिक युग में लोग किसी की भी मदद करने के लिए तैयार नहीं दिखते। परिवार के लोग भी आवश्यकता पड़ने पर कन्नी कटाते नजर आते हैं लेकिन सिपाही और उसकी पत्नी ने पुरानी परम्पराओं को जीवित रखा था। यही कारण है कि अपने छोटे से घर में भी उन्होंने अजनबी को लाना अपना फ़र्ज़ समझा। दूसरी ओर नई पीढ़ी के लेखक को भोजन आदि ग्रहण कर लेने के बावजूद पुलिस वाले और उसके परिवार पर भरोसा नहीं हो रहा था। वस्तुतः आज का समाज अविश्वासों पर ही चल रहा है, कोई भी किसी पर विश्वास करने को तैयार नहीं नजर आता है। निम्नांकित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं– "जैसे ही सोचने का कुछ मौका मिलता था, मन का डर सामने आकर खड़ा हो जाता था। खाने को तो मैंने खा लिया था, पर एक पुलिस वाले के यहाँ, अपने को किसी भी प्रकार से सुरक्षित अनुभव नहीं कर रहा था। मन में रह-रह विचार आते थे; दद्दू गाड़ी की सवारियों को इसी प्रकार लाते होंगे, माई इसी प्रकार ठिकुआ खिलातीं होंगी, और जब व्यक्ति पूरी तरह वश में हो जाता होगा, सब मिलकर उसका.....। वरना ऐसा क्यों है, दद्दू द्वारा किसी अपरिचित को घर लाने पर भी किसी ने उनका विरोध नहीं किया था। ऐसा लगता था, सब पहले से ही तैयार बैठे हैं, मेरा स्वागत करने के लिए।"[3] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि लेखक जिस परिवेश में रहा है, वह इस वजह से आसानी से किसी पर भी विश्वास नहीं

कर पाता है। धीरे–धीरे एक ही रात में जब वह पूरे परिवार का अपने प्रति अपनापन देखता है तब वह सहज हो पाता है। जिस तरह से पुलिस वाले की पत्नी उसे छठ का प्रसाद ठेकुआ उसे खिलाती है, ऐसे अभिभूत करने वाले कार्य ने उसके दिल में जमे बर्फ को पिघला दिया। पुलिस वाले के परिवार और उसके बीच एक ऐसा अनाम और आत्मीय रिश्ता कायम हो गया कि फिर तीन वर्ष बाद जब लेखक को अवसर मिला तब वह पुलिसवाले के घर गया था। यद्यपि तब तक उस घर की हालत बहुत बदल चुकी थी और वृद्ध पुलिस वाले की मृत्यु हो चुकी थी और अनुकंपा पर उसके पुत्र को आसाम पुलिस में नौकरी मिल चुकी थी। इसके बावजूद भी रिश्तों की गर्माहट बरकरार थी।

उनकी कहानी 'झुनझुना' आधुनिक दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों को उद्घाटित करती हैं। यह सर्वविदित है कि आज न केवल पुरुष बल्कि महिलाएं भी पैसे कमाने की होड़ में आगे निकलना चाहती हैं। आज स्त्रियां अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के साथ समझौता करने को तैयार नहीं हैं क्योंकि उन्हें यह महसूस होता है कि सदियों तक पुरुष ने अगर उन्हें गुलाम बना कर रखा तो उसका कारण आर्थिक परतंत्रता ही थी। पैसे के लिए पुरुष पर निर्भर रहने वाली औरतें आज भी पुरुष की गालियां सुनने को विवश हैं। जबकि आर्थिक रूप से स्वतंत्रता हासिल कर चुकी औरतें पलक झपकते तलाक लेने को तैयार नजर आती हैं। उक्त कहानी की नायिका 'अंजना' भी एक ऐसी महिला है जो किसी भी कीमत पर अपनी नौकरी के साथ समझौता नहीं करती। दुर्भाग्य से उसका पति यशपाल उससे बहुत उम्मीद लगाए रहता है परंतु उम्मीद करने भर से क्या होता है। यशपाल चाहता है कि पत्नी उसके साथ रहे और अपनी नौकरी छोड़ दे। यह बात जैसे ही अंजना के कानों में पड़ती है, वह तत्क्षण कहती है– मेरी नौकरी के छोड़ देने का सवाल तो तुम अपने दिमाग से ही निकाल डालो। और तुमने जो अभी यह कहा कि ऐसी शादी से क्या फायदा? तो इसके लिए तुम्हें 'शादी' को री-डिफाइन करना होगा। जहाँ तक मैं समझती हूँ, 'ऐसी शादी' से तुम्हारा तात्पर्य है, अपनी नौकरी छोड़कर मैं तुम्हारे पास रहूँ, और जब तुम्हारा जी भर जाए, गाँव जाकर, तुम्हारे पिताजी के लिए रोटी बनाऊँ तथा अपने बहू होने की सार्थकता सिद्ध करूँ। मैं तुमसे एक सवाल पूछती हूँ, क्या तुम मेरे लिए अपनी नौकरी छोड़ सकते हो? क्या तुम मेरे साथ स्थाई रूप से रहने चल सकते हो? यदि तुम अपनी नौकरी नहीं छोड़ सकते, मुझसे वैसा करने के लिए कह कैसे सकते हो। मेरे पिताजी ने गलती की थी, तुम्हारे साथ मेरा विवाह करने से पहले, तुमसे और तुम्हारे पिताजी से पूछ लेना चाहिए था, कौन सी शादी चाहिए? 'ऐसी' या 'वैसी'।"[4] उक्त पंक्तियों में अंजना ने बहुत सार्थक बातें कही हैं। स्त्रीवाद के इस दौर में पुरुष केवल अपनी मनमर्जी नहीं चला सकता। आज की स्त्रियों का यह सवाल बहुत तार्किक है कि क्या पति भी अपनी नौकरी छोड़कर पत्नी जहां नौकरी कर रही हो वहां जा सकता है। केवल इतना ही नहीं यशपाल की तरह अन्य विवाहित पुरुष भी अपनी पत्नी के सरनेम के पीछे हाथ धो कर पड़े रहते हैं। वे चाहते हैं कि पत्नी के नाम के पीछे उनका सरनेम लगा हो। आज की स्त्रियां इसके खिलाफ भी विद्रोह करती नजर आती हैं। जब यशपाल उसे अपने नाम के साथ द्विवेदी की जगह त्रिपाठी लगाने को कहता है तो वह बिफर पड़ती है और स्पष्ट शब्दों में कहती है– "तुम मेरे सरनेम के पीछे क्यों पड़े रहते हो? मेरा नामोनिशान मिटा देने से तुम्हें क्या मिल जाएगा? मैं जन्म से अंजना द्विवेदी हूँ, और वही बनी रहना चाहती हूँ, पूरे जन्म भर। हमेशा, तुम यही क्यों सोचते हो, मैं तुम्हारी नाव में बैठकर ही यात्रा कर सकती हूँ। हम अलग-अलग नावों में सवार होकर भी चल सकते हैं। मैं तुम्हारी पत्नी बाद में हूँ, एक स्वतन्त्र स्त्री पहले। और वह स्त्री, पति के सरनेम के बिना भी अपनी पहचान बनाए रह सकती है। सरनेम बदलने की कल्पना मात्र से ही, मैं अपने को अस्तित्वविहीन समझने लगती हूँ। वह मेरा अस्तित्व

है। देअरफोर, आइ विल नेवर आइडेन्टिफाइ माइसेल्फ विद योर सरनेम। आइ रिक्वेस्ट यू, नाट टु फोर्स मी फार दैट।"[5] पितृ सत्तात्मक समाज में पुरुषों के वर्चस्व को चुनौती देती आज की स्त्रियां अपनी स्वतंत्र पहचान को बचाने के लिए निरंतर संघर्षरत हैं। विवाह भी अब स्त्रियों के लिए कोई एक ऐसी बाध्यता नहीं रह गई है कि उसे निभाना वह अपने अस्तित्व के लिए बहुत आवश्यक समझती हों। क्योंकि स्त्री विमर्शकारों को यह लगता है कि विवाह का एक ही उद्देश्य है, बच्चे पैदा करना। स्वाभाविक है उसके लिए पुरुष और स्त्री का संसर्ग आवश्यक है। अंजना को अपने पति का स्पर्श भी पुत्री के जन्म लेने के बाद अत्यधिक गंदा लगने लगा था। निम्नांकित पंक्तियाँ द्दष्टव्य हैं– "विवाह के नाम पर अब क्या होना शेष है, सेक्स और बच्चा, सब कुछ तो हो चुका है। चाँदनी के पैदा होने के बाद से, जब भी यशपाल उसे छूता, उसे लगता, उसका बलात्कार हो रहा है। विवाह के प्रारम्भिक दिनों में, शायद नए-नए आकर्षण के कारण, यशपाल उसे कुछ-कुछ अच्छा लगता भी था, पर अब तो उसे उससे एक अजीब सी नफ़रत हो गई है। अब उसे यशपाल के पैर के नाखून गंदे लगते, मूछें नत्थू लाल जैसी लगतीं, दाँत पीले लगते, आँखें चिपचिपी लगतीं, होंठ सूअर की थूथन जैसे लगते, इतना ही नहीं, अब उससे उसके पसीने की बदबू भी बर्दाश्त न होती।"[6] उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि आज की महिलाएं हर उस चीज से आजादी चाहती हैं जो उन्हें बांधने का प्रयास करती है। पुरुष के साथ स्त्री का विवाह इसी लिए करा दिया जाता है कि उसके जीवन में कोई भटकाव न आए। दरअसल पितृ सत्ता को मानने वाला हर व्यक्ति जातिवादी होता है। उसे यह लगता है कि परिवार की स्त्री किसी और से प्रेम करे उससे पहले उसे ठिकाने लगा देना आवश्यक है। अन्यथा परिवार और जाति की जग हँसाई होगी। स्त्रियां मर्दवादी समाज के इन चालों को आज बखूबी समझ चुकी हैं, इसी लिए आज विद्रोह कर के अपना हक प्राप्त करना चाहती हैं।

'पाट' उनकी एक ऐसी कहानी है जो आर्थिक और सामाजिक विषमता को अपने भीतर समेटे हुए है। भीमा के परिवार की कई पीढ़ियां सन्ता सिंह के परिवार की मजदूरी करते हुए दिवंगत हो गई लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार न हुआ। भीमा के पिता भी यह चाहते थे कि वे अपने पुत्र को पढ़ा–लिखा कर बड़ा आदमी बनाएंगे। वे कहा करते थे– "बड़ा हो जाने दो मेरे भीमा को, देखना, डमरुआ में कोई मेरी बराबरी न कर पाएगा, पढ़ाऊँगा, बड़ा आदमी बनाऊँगा उसे।"[7] अपने पिता की तरह ही भीमा की भी यही इच्छा थी कि उसके दोनों पुत्र पढ़–लिख कर समृद्ध हों। जब यह बात सामंतवादी मानसिकता वाले सन्ता सिंह को पता चली, जिसके परिवार की मजदूरी भीमा के पूर्वज करते चले आ रहे थे, तब उसने भीमा को खूब फटकार लगाई। उसने कहा– "अबे घोंचू ! बुद्धि मारी गई है तेरी और तेरी घर वाली की। बच्चों को स्कूल भेज भूखों मरेगा। भाग्यशाली समझ अपने को, चार हाथ बढ़े हैं घर में कमाने वाले। तू तो आती लक्ष्मी को ओट देने चला है।"[8] यह तथ्य सर्वविदित है कि सामंतवादी मानसिकता से ग्रस्त लोग अपने से कमजोर लोगों को पढ़ने नहीं देना चाहते। वे जानते हैं कि संसाधन के अभाव में जो नहीं पढ़ सके हैं उनके भीतर भी आग होती है। वे किसी भी हालत में उस आग को भड़कने से रोकना चाहते हैं। बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर ने यूंही नहीं कहा था कि 'शिक्षा वह शेरनी का दूध है, जो पियेगा वह दहाड़ेगा।' तथाकथित ऊंची जाति के लोग तमाम उपक्रम कर के गरीबों, दलितों और पिछड़ों के बच्चों को पढ़ने से रोकने की कोशिश करते हैं। 'सन्ता सिंह' के नाम से ही स्पष्ट होता है कि वह सवर्ण रहा होगा और भीमा के नाम के साथ कोई सरनेम का न होना इस बात का परिचायक है कि वह किसी पिछड़ी जाति का होगा। लाख कोशिश करने के बाद भी भीमा इतना न कमा सका कि अपने पुत्रों की पढ़ाई जारी रख सके। अंततः दोनों बच्चों की पढ़ाई छोट गई। निम्नांकित पंक्तियाँ द्दष्टव्य हैं– "अभी पूरा साल भी न बीता था, रामू-श्यामू की पढ़ाई छूट गई। भीमा-सत्तो सन्ता सिंह

के यहाँ से, दो बेरा की रोटी किसी प्रकार कमा पाते थे। उससे हटकर और कुछ भी करना उनके बस की बात न थी। बच्चों को स्कूल भेजने में कुछ न कुछ लगा ही रहता था, खड़िया, कपड़े।"[9] नियति के चक्र ने श्यामू को भी वहीं पटक दिया जहां उसके पूर्वज पीढ़ियों से पशुवत अपना जीवन होम करते आ रहे थे। गर्दन पर पाट ढोना कोई आसान कार्य नहीं है लेकिन जब श्यामू ने उसे कर दिखाया तब अपना भाग्य मान कर भीमा ने खुद पर खूब गर्व महसूस किया। निम्नांकित पंक्तियां द्दष्टव्य हैं– "श्यामू की गर्दन ने वाक़ई धोखा नहीं दिया था। वह पाट उठा लाया था। सन्ता सिंह को पहले तो विश्वास ही न हुआ था लेकिन बाद में सार्वजनिक रुप से उसकी प्रशंसा की थी। भीमा का तो जीवन ही सार्थक हो गया था। गर्व हुआ था उसे अपने खून पर, और उस खून से पैदा अपनी संतान पर।"[10] वस्तुतः उक्त गर्व परिस्थितियों से समझौते का सूचक है। उपर्युक्त पंक्तियों में जिस गौरव की अभिव्यक्ति हुई है वह दरअसल एक विशिष्ट किस्म का सांत्वना पुरस्कार है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि डॉ. सच्चिदानंद चतुर्वेदी की कहानियां मानव मन को झकझोरती हैं। समाज के ताने–बाने को प्रश्नांकित करती हैं। पारिवारिक और दाम्पत्य जीवन की चुनौतियों को यथार्थपरक ढंग से उद्घाटित करती हैं। समाज और परिवार के जो पूर्वाग्रह हैं उनसे टकराती हैं चतुर्वेदी जी की कहानियां। आज भी स्त्रियों और दलितों के साथ किस तरह का व्यवहार किया जाता है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। लेकिन कोई भी उस पर अपनी चुप्पी नहीं तोड़ना चाहता है। चतुर्वेदी जी ने यह साहस दिखाया है। उन्होंने समाज के सत्य को जितनी बारीकी से उद्घाटित किया है, वह उनके लेखकीय पुरुषार्थ का द्योतक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. चतुर्वेदी, सच्चिदानंद, रोशनी की लकीरें, अमन प्रकाशन, संस्करण–2020, पृष्ठ–10.
2. वही, पृष्ठ–11.
3. वही, पृष्ठ–14.
4. वही, झुनझुना, पृष्ठ–24.
5. वही, पृष्ठ–26.
6. वही, पृष्ठ–28.
7. वही, पाट, पृष्ठ–31.
8. वही, पृष्ठ–34.
9. वही, पृष्ठ–35.
10. वही, पृष्ठ–37.

•